International Journal of Applied Research 2023; 9(8): 17-19

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(8): 17-19
www.allresearchjournal.com
Received: 18-05-2023
Accepted: 23-06-2023

डॉ. सविता वशिष्ठ
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जैन कन्या पी जी कॉलेज, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सविता वशिष्ठ
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जैन कन्या पी जी कॉलेज, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कृतशास्त्रों में वर्णित ब्रह्मचर्य एक विवेचन

डॉ. सविता वशिष्ठ

सारांश
भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत धर्मप्रधान भारत के ऋषियों महर्षियों ने प्राचीन समाज को सुव्यवस्थित करने हेतु आश्रम चतुष्टय के सिद्धांत की कल्पना की है। और इसको चार काल में विभक्त किया गया है। और प्रत्येक काल की अवधि पचीस वर्ष मानी गई है।। यह चार विभाग ही आश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुए आश्रम शब्द आ उपसर्ग पूर्वक श्रम् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ गुरुकुल और ऋषि–मुनियों का निवास स्थान भी है। किन्तु यहाँ पर आश्रम शब्द का अर्थ मनुष्य जीवन के चार पड़ाव ये चार आश्रम या पड़ाव हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। प्राचीन भारत का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति इन चारों आश्रमों में रुकते हुए अपनी लोकयात्रा को पूरी करता था। यह आश्रम व्यवस्था ही मनुष्य को सम्पूर्ण बनाकर उसे चरम लक्ष्य तक पहुँचाती थी। महाकवि कालिदास ने आश्रम व्यवस्था को अपनाना प्रशंसनीय मानते हुए ही अपने काव्यनायक रघुवंशियों के लिए अधोलिखित उद्‌वार अभिव्यक्त किए हैं–

शैशवेभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धनिवृत्तीनां मोगेनान्ते तनुत्यजाम्

अर्थात् – शैशवावस्था में विद्या का अभ्यास करने वाले (ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले) युवावस्था में विषयों की इच्छा करने वाले (गृहस्थ का आचरण करने वाले) वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण करने वाले (वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले) तथा अन्त में योग से शरीर छोड़ देने वाले (सन्यास धारण करने वाले) रघुवंशियों का मैं वर्णन करता हूँ। अधोलिखित श्लोक भी आश्रम व्यवस्था की अनिवार्यता का उद्‌घोष करता है

आद्ये वयसि नाधीतम्, द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये न तपस्तस्म्, चतुर्थे किं करिष्यति।।

इन चार आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य है कि मनुष्य सामाजिक नियमों का पालन करते हुए अपनी संपूर्ण आयु को सुव्यवस्थित रूप से जिए। आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति आ उपसर्ग पूर्वक श्रम् धातु से की जाती है, जिसका अर्थ है। निवास। यदि चारों आश्रमों के प्रमुख कर्तव्यों पर दृष्टिपात् किया जाए तो सहज ही समझ में आ जाता है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्यय नात्मक श्रम की अपेक्षा रहती है। गृहस्थ आश्रम में रचनात्मक श्रम आवश्यक है। तथा वानप्रस्थ में तपस्या एवं सन्यास आश्रम में योग साधना रूप श्रम किया जाता है। इनमें ब्रम्हचर्य से संबंधित मनुष्यों के कर्तव्यों का परिचय निम्नलिखित है।

कूटशब्द : ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास

प्रस्तावना
ब्रह्मचर्य आश्रम चारो आश्रमों की आधारशिला है। इस आश्रम में रहते हुए व्यक्ति अपने भौतिक उन्नति के साथ–साथ आध्यात्मिक उन्नति का शुभारंभ सफलता पूर्वक कर सकता है। मानव के जीवन में पोडश संस्कारों में उपनयन एवं वेदारंभ तथा समावर्तन यह तीन संस्कार इसी आश्रम के अंतर्गत आते हैं। ब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्म उपपद पूर्वक धातु से उत्पन्न होता है जिसका अर्थ है – श्रेष्ठ आचरण करना, महाभारत के रचनाकार महर्षि वेदव्यास ने श्रेष्ठ आचरण करने वाले को ब्रह्मचारी कहा है। और उनके मत में ब्रह्मचारी वह भी है जो गुरु की सेवा करता है। इंद्रियों को वश में रखता है। केवल ब्रह्म ज्ञान की इच्छा करता है। यथा– ये गुरुन् पर्युपासन्ते नियता ब्रह्मचारिणः

ब्रह्मचारी का लक्षण बताते हुए महर्षि वेदव्यास ने अष्वमेधिक पर्व में लिखा है कि–

ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियवये रतः। अपते व्रतकर्मा तु केवलं ब्रह्मणि स्थितः।

महर्षि वेदव्यास के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्म ही सब कुछ है वही अग्नि है। वहीं समिधा है। ही ब्रह्म से उत्पन्न है। ब्रह्म ही जल है। गुरु ही ब्रह्म है। वह ब्रह्म में ही लीन रहता है। महर्षि वेदव्यास ने कहा है–

ब्रह्मैव समिधस्तस्य ब्रम्हानिर्ब्रह्मसम्भवः झापो ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म स ब्रह्मणि समाहितः।।

इस प्रकार माना जा सकता है कि ब्रह्मविद्या अथवा ज्ञानरूपी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए जिस काल में विद्यार्थी श्रेष्ठ आचरण करता है, वह ब्रह्मचर्याश्रम है, और विद्यार्थी ब्रह्मचारी है। अतएव ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति का मुख्य उद्देश्य विद्याध्ययन है। इस आश्रम में पुस्तकीय ज्ञान का ही नहीं, अपितु व्यवहारिक ज्ञान का भी महत्व है, जो आगे चलकर अन्य आश्रमों के लिए उपयोगी है। हमारे ग्रन्थों में ब्रह्मचारी के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं–

दण्डानिपानि मेलां चौव धारण गरेद भैमनिष्वात्मवृत्तये।।
मेखला च भवेत्माजी जटी नित्योदकस्तथावज्ञोपवीती स्वाध्यायी अलुब्धो नित्यव्रतः।।

अर्थात् समस्त ब्रह्मचारियों को चाहिए कि वह दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत और गूंज की मेखला, धारण करें, नित्य स्नान करें, स्वाध्याय करे, लोभ से दूर रहे, नित्य व्रत का पालन करें, ब्राह्मणों के घर भिक्षा मांगे तथा अनिन्दित आचरण करें।
भारतीय ऋषियों ने ब्रह्मचारी के उपर्युक्त लक्षण बताते हुए उसके व्यक्तित्व और सर्वागीण विकास पर ध्यान दिया है। अर्थात ब्रह्मचारी के लिए स्वाध्याय अथवा विद्यार्जन ही पर्याप्त नहीं होता। उसकी वेशभूषा अन्य व्यक्तियों से भिन्न होनी चाहिए, उसे स्नान आदि के द्वारा स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए, और अनिन्दित आचरण से मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक रखना चाहिए।
हमारे आचार्यों ने ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश हेतु उपनयन संस्कार की सुंदर परिकल्पना की है, जिसका अभिप्राय है विद्यार्जन हेतु ब्रह्मचारी का गुरु के समीप जाना। इस उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण वालक के लिए आठ वर्ष क्षत्रिय के लिए ग्यारह वर्ष तथा इसके लिए बारह वर्ष की आयु का विधान किया है–

गर्भाष्टमे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।

इसके अतिरिक्त आचार्यों ने यह भी बताया है कि गुरु उपनयन संस्कार के पश्चात् ऐसे शीष्य को पढ़ाए जो अध्ययनशील, शास्त्रोक्त विधि से आचमन करने वाला ब्रह्माञ्जलि बाँधने वाला (अध्ययन के समय), हल्के और सादे वस्त्र पहनने वाला जितेन्द्रिय हो। वह उसे पवित्रता, आचार–व्यवहार, यज्ञ संबंधी कार्य तथा संध्योपासना की शिक्षा दें–

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः आचारमनिकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च।।
अध्येष्यमाणस्त्वावान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ब्रह्माञ्जलिकृतोध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः।।

उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुकुल में प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारी को अधोलिखित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए – ब्रह्मचारी शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के बुलाते ही उसके समीप पढ़ने को जाए बिना कहे ही उनकी सेवा करें, उनके जागने से पहले जागे, उनके मोने के बाद मोए। वह मदुल जितेन्द्रिय, सावधान और स्वाध्यायशील बने। उसका यही आचरण उसे सफल कर सकता है–

आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्य पूर्वोत्थायी चरमं चोपशायी।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तष्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी।।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि शिष्य के अनुकूल आचरण और निष्ठा से प्रसन्न होकर गुरु प्रसन्नतापूर्वक उसे शिक्षा देते थे और मार्गदर्शन करते थे। अध्ययन के समय शिष्य का जीवन त्याग तथा तपोमय होना चाहिए इस समय उसे आलस्य, निद्रा, तंद्रा का परित्याग कर देना चाहिए और सुख की इच्छा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि तभी वह सावधान मन वेदादि का अध्ययन तथा मनन कर सकता है–

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतो सुखम्मसुखार्थी वा त्यजेद् विद्या विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्।।

प्राचीन काल में भिक्षाटन भी गुरुकुल में रहने वाले ब्रह्मचारी का कर्तव्य था। इस नियम का उद्देश्य यह था कि ब्रह्मचारी नम्र बने अन्य ब्रह्मचारीयों से अपने को ऊँचा या नीचा ना समझे अपने लिए और अपने आश्रम के लिए अर्थोपार्जन करे। इसलिए ब्रह्मचारी का कर्तव्य निर्धारित कर दिया गया कि शिक्षा में प्राप्त अन्न वह अपने गुरु को सौंप दे और उन्हीं से आज्ञा पाकर उसका उपभोग करे–

गुरुशुश्रूषां भैक्ष्यं विद्यार्थी ब्रह्मचारिणः।।

अध्यात्मिक रहस्य श्रवण करना, वेद विहित नियमों का पालन करना, गुरु सेवा करना स्वाध्यायशीलता और ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करना, यह भी ब्रह्मचारी के आवश्यक कर्तव्य हैं–

रहस्यश्रवणं धर्मों वेदव्रतंनिषेवणम्यग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम्।।

इसके साथ–साथ महाभारत कार ने ब्रह्मचारी को यह भी उपदेश दिया है कि वह वेदमन्त्रों का चिंतन एकाकी ही करें, वेदमन्त्रों का जप एकाकी ही करें, इस स्थिति में एक ही आचार्य की सेवा में रत रहे, मन और इंद्रियों को वश में करते हुए दीक्षा का पालन करे वेदों का स्वाध्याय करें, अपने लिए निर्धारित कर्तव्यों को करें, तथा गुरु के ही आश्रम में निवास करे–

स्मरन्नेको जपन्नेकः सर्वानेको युधिष्ठिरएकस्मिन्नेव चाचार्ये शुश्रुषुर्मलपकवान्।।

ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यंदीक्षापरो वशीपरिचय तथा वेदं कृत्यं कुर्वन् वरोत् सदा। हमारे आचार्यों ने ब्रह्मचारी को सत्कर्मों की ओर ही प्रेरित किया है। उसे दुष्कर्मों से बचने का उपदेश दिया है। अध्ययन में बाधक तत्वों से दूर ही रहने का आदेश दिया है। भोग विलास उसके लिए त्याज्य माना है। महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मचर्य के चार चरणों का वर्णन करके भी ब्रह्मचारी के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है–

गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीतत्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः।
मानं न कुर्यानादधीतरोप–मेष्प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

1. शिष्य गुरु को नित्य अभिवादन करें, पवित्र और प्रमादरहित होकर स्वाध्याय की इच्छा करे, अभिमान ना करें, मन में क्रोध ना करें, यह ब्रह्मचर्य का प्रथम चरण हैं। इस प्रकार शिष्यवृत्ति के कर्म से, पवित्र आचरण करने वाला जो छात्र विद्या प्राप्त करता है तो वह ब्रह्मचर्याश्रम का प्रथम चरण कहलाता है।

2. ब्रह्मचर्य का दूसरा चरण है कि शिष्य अपने कर्म, मन तथा वाणी से अपने प्राणों और धन से भी गुरु का प्रिय करें। वह गुरु के समान ही उनकी पत्नी तथा पुत्र का भी आदर करें।
3. अपने गुरु ने जो किया है, उसे जाने और उससे जो कार्य सिद्ध हुए हैं, उनका विचार करते हुए, मन ही मन प्रसन्न होकर यह समझे कि गुरु ने ही मुझे उन्नत किया। यही ब्रह्मचर्य का तृतीय चरण हैं।
4. आचार्य के उपकार का बदला चुकाए बिना अर्थात् उन्हें दक्षिणादि दिये बिना शिष्य को आश्रम नहीं छोड़ना चाहिए, और दक्षिणा देकर भी मन में यह न सोचें कि मैं गुरु पर बड़ा उपकार कर रहा हूँ और मुँह से भी दक्षिणा देने की चर्चा ना करे। ब्रह्मचर्य का यह चौथा चरण है।

महाभारत में वर्णित ब्रह्मचर्य की उपर्युक्त चार चरण शिष्य को गुरु भक्ति की अनुकरणीय शिक्षा देते हैं। वैसे तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति किसी के सामने पर प्रायः उसके प्रति कृतज्ञ होता है। तो फिर विद्याध्ययन के समय विद्यार्थी के मन में ज्ञान दीप प्रज्वलित करने वाले गुरु के प्रति शिष्य को कृतज्ञ होना चाहिए, उसके अनुकूल ही आचरण करना चाहिए।

शिष्य अपनी आयु का चौथाई भाग ब्रह्मचारी के रूप में गुरुकुल में व्यतीत करे। वहाँ रहते हुए, वह किसी की भी निन्दा ना करे, धर्म तथा अर्थ को समझे, और गुरु तथा गुरु पुत्र की सेवा करें–

आयुषस्तु ब्रह्मचार्यनसूयकः।
गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद् धर्मार्थकोविदः।।

मनु का मत है कि ब्रह्मचारी वेदाध्ययन के लिए छत्तीस वर्ष अठारह वर्ष नौ वर्ष अथवा वेदार्थ ग्रहण करने की अवधि तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहे –

षट्विंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ चौवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वेद के लिए 12.6 अथवा 3 वर्ष अबधी नियत है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने प्रत्येक वेद के अध्ययन के लिए बारह वर्ष अथवा पाँच वर्ष की अवधि निर्धारित की हैं :–

प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा।।

प्राचीन काल में विद्याध्ययन का समय ब्रह्मचर्याश्रम माना जाता था। जिसमें ब्रह्मचारी आश्रम के नियमों का पालन करते हुए, अपने गुरु से अन्य विद्याओं के अतिरिक्त ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता था, अपनी सेवा और भक्ति से गुरु को प्रसन्न और संतुष्ट करता था गुरुकुल का सहयोग करता था। इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति एकाग्र मन से विद्या ग्रहण करता था। हमारे धर्मशास्त्रियों ने यहाँ तक माना है कि ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाला व्यक्ति ऐसा मोक्ष प्राप्त करता है, जिसमें उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है। स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्यव्रत का पालन न केवल इस लोक के अभ्युदय का हेतु है, अपितु मोक्ष प्राप्ति का भी साधन है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य चारों आश्रमों की आधारशिला है जिस पर संपूर्ण जीवन चलता है। ब्रह्मचर्य योग के आधारभूत स्तंभों में से एक है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य के आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता ये वैदिक वर्णाश्रम का पहला आश्रम भी है, जिसके अनुसार ये ०–२५ वर्ष तक की आयु का होता है। ब्रह्मचर्य एक अत्यंत पवित्र धर्म है जिसकी पवित्रता पावनता से कोई इनकार नहीं कर सकता। विश्व में समस्त धर्मों में ब्रह्मचर्य को एक पावन पवित्र धर्म माना गया है। जीवन के ऊंचे से ऊंचे स्थान को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं हो सकता। एक सच्चा ब्रह्मचारी में अपारशक्ति होती है जो व्यक्ति सच्ची श्रद्धा से ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह पूज्य बन जाता है ब्रह्मचारी दीर्घ जीवी होता है, उसका शरीर स्वस्थ रहता है, उसका मन प्रसन्न रहता है, तथा उसकी बुद्धि भी स्वच्छ एवं अत्यंत पवित्र रहती है, इसीलिए चारों आश्रमों की आधारशिला ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करना चाहिए। विद्यार्थियों को भावी जीवन के लिये शिक्षा ग्रहण करनी होती है। ब्रह्मचर्य से असाधारण ज्ञान पाया जा सकता है। वैदिक काल और वर्तमान समय के सभी ऋषियों ने इसका अनुसरण करने को कहा है। इस प्रकार संस्कृत शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के महत्व का अत्यंत वर्णन प्राप्त होता है। इति।

सन्दर्भ

1. रघुवंश, 1,18
2. महाभारत शान्तिपर्व 192,4
3. वहीं आश्वमेधिकपर्व 15,16
4. वही 26,18
5. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय 29 महाभारत, आश्वमेधिक पर्व,46,6
6. मनुस्मृति 2,36
7. वही 2,69–70
8. महाभारत आदिपर्व, 91,
9. वहीं उद्योगपर्व, 4, 6
10. ब्रह्माण्डपुराण, 1, 2, 7,262
11. महाभारत, अनुशापर्व, 1, 2, 141, 35
12. वहीं शान्तिपर्व, 61, 18–19
13. वहीं, उद्योगपर्व, 44, 10
14. वहीं, शान्तिपर्व, 252, 16
15. मनुस्मृति .1
16. याज्ञवल्क्यस्मृति 1.36